वेदान्त, काश्मीर शैव दर्शन, सूफ़ी और लोक

(उपनिषद्, शङ्कर, अभिनव,रूमी और लल्लेश्वरी के आलोक में)

मीनाक्षी जोशी

https://doi.org/ 10.61410/had.v21i2.294

प्रस्तुत शोधपत्र ICSSR, नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त शोध परियोजना, शीर्षक: भारतीय ज्ञान परम्परा में कश्मीरी शैव (सृष्टि विज्ञान और लोक परम्परा के विशेष सन्दर्भ में) के अन्तर्गत प्रकाशन हेतु प्रेषित है।

मानवीय अन्तर्जगत् अर्थात् मनोभूमि के दो महत्वपूर्ण पक्ष है- अनुभूति एवं विचार। जब मानव इन दोनों ही महत्वपूर्ण पक्षों को संतुष्टि प्राप्ति होती है, तब वह आनंदरूपी साक्षात्कार की प्राप्ति करता है। वेदांत मानवीय अन्तर्जगत् के दोनों पक्षों को पूर्णता प्रदान करता है। इसी हेतु वेदांत की प्रतिष्ठा सर्वमान्य है। अनुभूति की भूमि पर अद्वैतभाव की प्रतिष्ठा तो हम इसी बात से ज्ञात कर सकते हैं कि वैश्विक परिष्कृत-भावभूमि सम्पन्न प्रत्येक मानव अद्वैतभाव अथवा उससे उत्पन्न होने वाली आनंदानुभूति को ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य मानता है। यह लौकिक तथा अलौकिक दोनों ही दृष्टियों से सम्पन्न है। वैचारिक भूमि में प्रतिष्ठा तो वाङ्मय की अमूल्य निधि संहिता में ही अद्वैतानुभूति एवं उसकी वैचारिक अभिव्यक्ति के दिग्दर्शन होते हैं । जिसका पुष्पन् हमें उपनिषद् में सहज सुलभ है। वैश्विक पटल पर कोई भी ऐसा विचारक नहीं होगा जिसने अपने प्रयोजनीय लक्ष्य के मूल में अद्वैतपरक विचार का शिलान्यास ना किया हो और यही कारण है कि अद्वैतवाद का ऐतिहासिक विकासक्रम ऋग्वेदीय ऋचाओं से लेकर उपनिषद्, शंकराचार्य, शंकराचार्य के उत्तरवर्ती आचार्य तथा आधुनिककालीन विवेकानंद, अरविंद तथा विनोबा भावे आदि तक सप्रमाण पल्लवित हुआ।

इस प्रकार जेनों, प्लेटो, अरस्तु का अधिष्ठान (जो आकृति रहित है सूक्ष्म है), शॉपेनहावर, सर विलियमजोंस, विंक्टरकजिन, श्लेगिल इत्यादि पाश्चात्य दार्शनिकों के विचारों में भी अद्वैतवेदांत की अंतः सूत्रता प्राप्त होती है। यहां तक कि देकार्त के विचार Cogito Ergo Sum उक्त वाक्य कहीं पूर्व काल में शाङ्करोत्तरवर्ती वाचस्पति मिश्र के ग्रंथ मे यथावत प्राप्त होता है-

"न हि कश्चित् सन्दिग्धो नाहमस्मीति" इन से पूर्व आचार्य शंकर स्वयं सिद्धांत को ब्रहमसूत्र में उपस्थित करते हुए कहते हैं- "**सर्वो हि आत्मास्तित्वम् प्रत्येति, न नाहमस्मीति। यदि हि नात्मत्वप्रसिद्धिः स्यात् सर्वो लोको नाहमस्तीति प्रतीयात् ।" ब्रहमसूत्रशाङ्करभाष्य १.१.१**

स्पिनोजा और आचार्य शंकर दोनों ही '**सर्वं खल्विदं ब्रहम**' को स्वीकार करते हैं तो दूसरी ओर "**इंद्रियानुभूत नानारूपात्मक जगत् आभासमात्र है तथा सीमित ज्ञान का ही प्रतिफल है**" इसे भी दोनों स्वीकार करते हैं।जैसे ही वास्तविक ज्ञान होता है पूर्व ज्ञान की निवृत्ति हो जाती है(Vasudev Kirtikar. Studies in Vedant p.20 Taraporevala, Bombay 1924) लाइबनित्ज अद्वैत की समान ईश्वर को इंद्रियों का विषय नहीं

• **सहायक प्राध्यापक ,संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज**

मानते तथा अद्वैत की माया तथा उसके "**मैटेरिया प्राइमा**" के सिद्धांत में भी सामानता है क्योंकि दोनों ही अनंत परमेश्वर के साक्षात्कार में इसे बाधक मानते हैं (A.K. Roy Choudhari- The Doctrine of Maya p.177)

बर्कले भी जगत् की असारता अद्वैत-वेदांत के समान ही स्वीकार करते हैं।दृष्टि-सृष्टि बाद भी मिलता जुलता ही है उनका काण्ट और अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों में शाम्य तथा वैशम्य में का दर्शन होता है दोनों के ही अनुसार ईश्वर जगत् का आधार है आत्मा शुद्ध ज्ञान स्थिति तथा ज्ञान की निर्विकल्प अवस्था तथा शुद्ध अनेक रूप ताकि अवस्था भी यहां स्वीकार्य है(दृष्टव्य-Dr. S. K. Das A Study of Vedanta P. 146 University of Calcutta 1937) इसी भांति अरस्तु प्लोटिनस जोरोस्टर इत्यादि दार्शनिकों में भी अद्वैत की अन्तःसूत्रता विद्यमान है। इस्लामिक दर्शन में भी "**इन्ना लिल्लाहे व इन्ना इलैहे राजयून**" इस कुरान की आयत का तात्पर्य तो "**इमानी भूतानि जायन्ते**" से पृथक् नहीं है तथा उपनिषादिक ब्रह्मवाद यहां पर वह **अतुल वजूद** के सिद्धान्त के रूप में मिलता है इसके अतिरिक्त इब्तुल का अरबी शब्द **हमावस्त** अर्थात् सब कुछ वही है **नेह नानास्ति किंचन** के रूप में ही विन्यस्त है। और सूफियों का विचार की सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक ही आत्मा है जो विभिन्न पदार्थों और जीवो के रूप में अभिव्यक्त होती है वह हमें उनसे कहीं पूर्व शब्दश: श्वेताश्वतर उपनिषद् में मन्त्र के रूप में दृष्टिगोचर होता है-

"एकोदेव सर्वभूतेषुगूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा" श्वेता. ६/११

अत: निर्भ्रान्त रूप से हम कह सकते हैं कि वैश्विक दर्शन पटल पर अद्वैतवेदान्त तन्तुरूप से सहज स्वीकृत हो आधार की संरचना करता है।

दुसरी ओर समुद्र की प्रणय भूमि काश्मीर हिमकिरीट की प्राचीर धारण कर धरती पर स्वर्ग का दृश्य उपस्थित करता है। भारत के भाल पर केसरी तिलक लगाता काश्मीर न केवल जीवनामृत को प्रवाहित करता है वरन् ज्ञान गंगा भी अविरल प्रवाहित करता है। ऋषि कश्यप की यह तपःपूत उर्वरा क्षेत्र अपने संस्कृत भाषा में निबद्ध विविध ज्ञानानुसंधान के तारतम्य में विविध आयामों को स्पर्श करता है। जैसे वैदिक वाङ्मय, व्याकरण, दर्शन, आगम परंपरा ,साहित्य, साहित्य शास्त्र इत्यादि में काश्मीर शैव परंपरा का विकास इस देवभूमि का अन्यतम अवदान माना जाता है। काश्मीर शैवदर्शन के स्रोत शैवागम है जिन्हें वेदों के समान शैव दर्शनिक भी अनादि काल से मानते हैं। शैवागम शिवज्ञान से प्राप्त मुक्त पुरुष की रचना मानी गई है उन्हें शिव की रचना ही कहा जाता है, क्योंकि शिव ज्ञान प्राप्त व्यक्ति को शिव रूप ही कहा जाता है।

शास्त्रीय दृष्टि से शैव दर्शन के उद्गम और विकास पर प्रकाश डालते हुए आचार्य सोमानंद ने शिव दृष्टि में कहा है कि शैव दर्शन अति प्राचीन काल में ऋषियों के पास था कलयुग के आने पर वे ऋषि किन्हीं कालपी ग्राम आदि में मानव दृष्टि से अदृश्य स्थान में चले गए और शैव विद्या का उच्छेद सा हो गया। तब कैलाश पर विचरण करने वाले भगवान श्रीकण्ठ नाथ की प्रेरणा से मुनि दुर्वासा ने अपने शिष्य त्र्यंबकादित्य द्वारा अद्वैत से दर्शन का शिक्षण पुनः प्रारंभ किया इसके प्रथम त्र्यंबकादित्य ने कैलाश पर्वत पर रहते हुए कुछ

समय तक विद्या का प्रचार किया फिर अपने शिष्य त्र्यंबकादित्य द्वितीय को यह प्रचार का आदेश दिया। (**सोमानंदकृत शिव दृष्टि 7.107)**

वेदान्त, काश्मीर शैव दर्शन, सूफ़ी और लोक : तुलनात्मक अध्ययन

उपनिषद् जहां पर वेदान्त की स्वस्वरूपानुसन्धान की यात्रा के रूप में भारतीय ज्ञान परम्परा के शीर्ष पर विराजित है वहीं जलालुद्दीन मोहम्मद रूमी के रूप में सूफी संप्रदाय अपने सर्वोच्च स्थान को न केवल प्राप्त करवाता है बल्कि आज भी उसे राह के राहगीरों के लिए मशाल की तरह मार्ग प्रशस्त करता है। वहीं लल्ला या लल्लेश्वरी अपने शिवत्व रूप में लोक कल्याणकारी मार्ग को उसी प्रकार तैयार करती है जिस प्रकार वितस्ता कश्मीर की ज़मीन को उपजाऊ बनाती हैं।

इस शोध पत्र के द्वारा हम तीन दिशाओं के चिन्तन की सारणियों से बने एक महासमुद्र का साक्षात्कार करने वाले हैं जिसने यह ज़मी और आसमां बनाया। स्पष्ट रूप से कहा जाए तो उस परम तत्त्व के अनुसंधान में इन तीन विविध चिंतन प्रणालियों से परिचित होंगे साथ ही यह जानने का प्रयास करेंगे की एक ही बात को एक ही तथ्य को तीन विपरीत दिशाओं से किस प्रकार कहा जा सकता है और किस प्रकार समझा जा सकता है।

उपनिषद् का काल समस्त काल गणना के उपरान्त ईसा पूर्व 1500 वर्ष के बाद निर्धारित नहीं किया जा सकता। इससे पूर्व ही माना जा सकता है। तथा इनका स्थान भी जम्मू द्वीप माना जाएगा किसी एक स्थान की यहां सम्पदा नहीं है। अनेक ऋषियों की परम तत्त्व के प्रति अनुभूतियों की श्रृंखला का नाम है उपनिषद् है।

वही जलालुद्दीन मोहम्मद रूमी अफ़ग़ान के बल्ख़ क्षेत्र में सन् 1207 से लेकर 1273 तक ज्ञान का प्रकाश प्रसारित करते रहे। उनकी यात्रा भी एक विस्तृत प्रदेश में थी। इस्लाम की शिक्षा दीक्षा के उपरान्त अपने गुरु शमसुद्दीन तबरेज़ी से सूफी में दीक्षित होने के बाद यह यात्रा अपूर्व यात्रा बनीं। इसीलिए वह अपने काव्य में चाहे वह दीवाने शम्स, मसनवी हो, दीवाने कबीर हो या अन्य सभी में अपना नाम छोड़ने की जगह वे 'शम्स तबरेज़' कहना अधिक चाहते थे।

जब हम लल्ला , लल्लेश्वरी या ललद्यद को देखते हैं तो लगभग 1335 ईस्वी में दो संस्कृतियों के मिश्रण के मध्य शिवाद्वैत की सहज समाधि लगाती हुई एक स्त्री को पाते हैं जो स्वयं स्त्री और पुरुष के भेद और बोध दोनों से मुक्त थी। जिसने अपने सहज ज्ञान और सहज ध्यान की सहजता से सभी को सहज कर लिया था। लल्ला की इस सहज भूमि पर हम उपनिषद् के प्रतिपाद्य ब्रहम को भी शिव के रूप देख सकते हैं और रूमी के माशूक के रूप में भी उसे प्राप्त कर सकते हैं।

कुछ स्थलों पर यह तीनों ही धाराएं उपनिषद्, रूमी और लल्लेश्वरी एक ही गूंज के साथ एकत्रित हो कर महासमुद्र बनाती है जहां यह तीनों बोलते हैं – **"बस तू ही रहे मैं ना रहूं।"** इस महासमुद्र में अवगाहन करने से मनुष्य मात्र को गुरेज़ नहीं। यहां हम उन्हें स्थलों का प्रत्यक्षीकरण करना चाहते हैं।

इन विभिन्न संस्कृतियों का संवाद प्रारंभ 1644 ईस्वी में मिर्ज़ा बेदिल की रचना से करते हैं जिन पर रूमी का पर्याप्त प्रभाव है। मिर्ज़ा लिखते हैं कि-

गुबारे दाश्तम दर ख़ाम-ए-नक़्क़ाश-ए-मौहूमी

शिकस्त अज़ दामन-श गुल कर्द-ओ-तसवीर-म बरंग आमद॥

अर्थात् चित्रकार ने भ्रम कल्पित तूलिका में मेरे निर्माण के उपादान को धूल के रूप में भरा था उसने अपना दामन झटका और मेरी आकृति अपने रंगों में जीवित होकर उभर आई।

इसी तथ्य को उपनिषद् "**तद्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्**" कहते हैं तो वेद उसे "**सः लोकानकल्पयत**" कहते हैं। इसी तथ्य को काश्मीर शैव परम्परा का प्रत्यभिज्ञाहृदयम् – "**स्वेच्छया स्वाभित्तो विश्वमुन्मीलयति॥२॥**" कहता है।इसी तथ्य को लल्लेश्वरी कहती है कि-

"**शिव छुय जो'व्युल जाल वाहरा विथ**,"

अर्थात शिव ने अपना बारीक जाल बिछाकर वही सर्वत्र व्याप्त है देखो कैसे सबके शरीरों में वह रचपच गया है यदि तू जीते जी उसे देख ना सका तो मर कर उसे क्या देखेगा विवेक और आत्म चिंतन से काम ले उसे अपने भीतर तू खोज लेगा।

मौलाना रूमी भी कुछ सर्वोच्च सत्ता के अतिरिक्त किसी की भी सत्ता से परहेज करते थे। वे लिखते हैं-

गुफ़्तम् "ऐ इश्क़ मन अज़ चीज़-ए-दिगर मे-तरसम"

गुफ़्त " आँ चीज़-ए-दिगर नेस्त दिगर हेच म-गो॥"

अर्थात् मैंने अपने माशूक़ से कहा "ऐ इश्क़! मैं अन्य पदार्थ से डरता हूं" माशूक़ ने प्रत्युत्तर में कहा "वह अन्य पदार्थ अब नहीं है कुछ मत कहो।"

इसी तथ्य को बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है - "**द्वितीयाद्भयं भवति**" **१/४/२** दूसरे से भय लगता है अर्थात् हम अभय की स्थिति तभी प्राप्त कर सकते हैं जब एक ही का अस्तित्व माने।

इसी को विस्तारित करते हुए आचार्य शंकर दशश्लोकी में कहते हैं-

न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा

न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः ।

स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णुः

तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥७॥

अर्थात् ना कोई शासन करने वाला है ना कोई शास्त्र है नहीं कोई शिष्य है ना तुम हो ना मैं हूं ना यह सारा प्रपंच है। केवल स्वरूप का अवबोध है जो अपना कोई भी विकल्प नहीं चाहता उसे सहन नहीं कर सकता वही जो एक शेष रह गया है वही शिव मैं हूं।

ललद्यद इसी तथ्य को कुछ इस प्रकार रहती है-

कुस् पुश ताय् क्वस पुशांत्री
कम् कुसम् लागिज्यस् पूजे।
कमि सर गोडु दिज्यस् जलधांनी
कवसन मंत्र शंकर् वुजे॥

अर्थात् कौन है माली कौन है मालिन कौन से फूल चढ़े पूजा में किस करें अभिषेक जलधारा में जब खुद ही शंकर आत्मा में जागृत हो तो कौन सा मंत्र उसे सुनाएं। अद्वैत की स्थिति में दूसरे का अस्तित्व ही नहीं रहता शक्ल विश्व वही हो जाता है जैसे बृहदारण्यक कहते हैं-

यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवभूत्, तत्केन कं जिघ्रेत्, तत्केन कं पश्येत्, तत्केन श्रृणुयात्, तत्केन कमभिवदेत्, तत्केन कं मन्वीत, तत्केन कं विजानीयात्? येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्? विज्ञातारामरे केन विजानीयादिति।-बृहदारण्यक उपनिषद् (2.4.14)

इसी को आगे बढ़ाते हुए रूमी कहते हैं-

सूफ़ी ख़ुदा नदारद कू नीस्त आफ़रीदे।

सूफ़ी के पास ख़ुदा नहीं होता क्योंकि सूफ़ी पैदा नहीं किया हो गया होता है।

कठोपनिषद् कहता है

मृत्यो: स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति। २/१/११

वह मृत्यु की ओर जाता है जो संसार में भिन्नता को देखा है।

मौलाना कहते हैं - **हम पिदरी व हम पिसर हम तो नेई व हम शिकर**

अर्थात् तुम स्वयं से पैदा हो रहे हो इसलिए ख़ुद ही अपने पिता हो और ख़ुद ही अपने पुत्र।

उपनिषद् कहते हैं - **ब्रहमविद् ब्रह्मैव भवति। मुंडक ३/२/९** जो उसे जान लेता है वह वही हो जाता है।

रूमी फिर कहते हैं - **नज़्ज़ारे ए जमाले ख़ुदा जुज़ ख़ुदा नकर्द।**

परमेश्वर के सौंदर्य का दर्शन परमेश्वर के अतिरिक्त किसी ने नहीं किया। अर्थात् जिसने भी उसके सौंदर्य का दर्शन किया वह परमेश्वर ही हो गया।

अभिनवगुप्त महोपदेशविंशतिकम् में इसी प्रकार कहते हैं-

त्वं त्वमेवाहमेवाहं त्वमेवासि न चास्म्यहम्।
अहं त्वमित्युभौ न स्तो यत्र तस्मै नमो नमः ॥

अर्थात् तुम तुम ही हो मैं मैं ही हूं तुम ही हो मैं नहीं हूं यह सारा भेद प्रपंच यह मेरा होना और तुम्हारा होना यह दोनों जिसमें नहीं होते इसको नमन उसको नमन।

लल्ला कहतीं हैं -

तंत्र् गलि ताय् मंत्र् म्वचे
मंत्र् गोल ताय् म्वतुय् चित्त्।
चित्त् गोल ताय् केंह् ति ना कुने
शून्यस् शून्याह् मीलिथ् गौव॥

अर्थात तंत्र विलय हो तो मंत्र शेष रहता है मंत्र विलय हो तो चित्त शेष रहता है चित्त लय हो जाए तो कुछ भी नहीं रहता शून्य में शून्य समा जाता है।

यह सभी उपनिषदों की वाणी - **"नेह नानास्ति किञ्चन:"**

या मौलाना की वाणी में कहें –**"साये ए तूस्त ऐ पिसर, हर चि बेरुस्त ऐ पिसर।"**

अर्थात् संसार में जो कुछ पैदा हुआ सब तुम्हारी परछाई है। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि संसार में कुछ पैदा ही नहीं हुआ तो यह संसार शाश्वत नहीं है और तुम्हारी परछाई है अर्थात् तुम्हारे अतिरिक्त कोई तत्त्व है भी नहीं।

जहां वेदांत कहता है – "**अहम् ब्रह्मास्मि**"

वहां रूमी दीवाने शम्स में कहते हैं- **"कीस्त कसी बेगू दिगर कीस्त कसी वरा ए तो"**

अर्थात् ज़रा बताओ तुम्हारे अतिरिक्त और कौन है?

तिस पर लल्ला कहतीं हैं

"साय शिल पीठस तु पटस" अर्थात् जो शिला पीठ चौकी में लगी है वहीं सड़क पर भी है जो शिला पृथ्वी तल पर है वही शिला चक्की में भी शोभायमान है। वस्तुत मूल तत्त्व एक है पर भिन्न-भिन्न दिखाई देता है उसी प्रकार शिवत्व का ज्ञान भी कठिन है।

शैव दर्शन दिग्घोषित करता है कि –"**शिवो भूत्वा शिवं यजेत**" यही कारण है कि शिव के जितने भी उपासक हैं वह शिव के समान ही वस्त्र आभूषण और भस्म रामाए बैठे रहते हैं। नंदिकेश्वर इसके सुंदर उदाहरण है।

वेदांत की भांति रूमी भी सामाजिक स्तर पर आचरण किए जाने वाले सदाचारों को चित्त की शुद्धि के लिए मानते हैं और भी आध्यात्मिक की ओर अग्रसर होने के लिए इन्हें साधन मानते हैं-

इल्मों हिकमत आयद अज़ नाने हलाल।
इश्क़ो रिक़्क़त ज़ायद अज़ नाने हलाल॥

रूमी सदाचार को शुद्ध का माध्यम मानते थे साधन मानते थे। इस प्रकार वेदांत जब अधिकारी की बात करते हैं तो वह कहते हैं -

अधिकारी तु विधिवत्-अधीत वेद-वेदाङ्गत्वेन आपाततः अधिगत-अखिल-वेदार्थः अस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरस्सरं नित्य-नैमित्तिक-प्रयश्चित्तोपासना अनुष्ठानेन निर्गत निखिल कल्मशतया नितान्तनिर्मलस्वान्तः साधना चतुष्टय संपन्नः प्रमाता|

लल्ला कदम कदम पर सहज प्राप्तिको ही अपना ध्येय बनाती है। और कबीर के समान ही रीत रिवाज की भर्त्सना भी करती है।

अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं कि जब समस्त जगत उसे पराशक्ति से ही बना है तब उसकी स्तुति कैसे की जा सकती है-

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके! सकलशब्दमयी किल ते तनुः।

निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो मनसिजासु बहिःप्रसरासु च॥

इति विचिन्त्य शिवे! शमिताशिवे! जगति जातमयत्नवशादिदम्।

स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता न खलु काचन कालकलास्ति मे॥

सूफियों को अपने परम तत्त्व के अतिरिक्त किसी की इच्छा नहीं इसलिए वह अनल्हक़ का भी विरोध करते हैं। ठीक वैसे ही जैसे गोपिया श्री कृष्ण के अतिरिक्त किसी को आराध्या नहीं स्वीकार करती की डांट कर उद्धव को बोलती है-

एक मनमोहन तो बस के उजारो मोहि

जिया में अनेक मनमोहन बसाओ ना।

लल्ला भी किसी भी दूसरे के अस्तित्व को नहीं स्वीकृत करती।वह कहती हैं-

दर्पण को जैसे मैल मिटा मेरे मन का

तभी मैंने पाया प्रत्यभिज्ञान

उसे जब पाया पास अपने

सब कुछ वही और मैं कुछ नहीं

और इसे सिद्ध करने में तर्क की कोई आवश्यकता नहीं केवल अनुभूति ही प्रामाण्य है इस तथ्य पर सभी एकमत है; रूमी कहते हैं-

तु-ई शागिर्दे जान-अफ़्ज़ा तबीबी

दर इस्तदलाले अफ़लतुन न गुंजी।

अर्थात तू उसे प्राणप्रद विद्या परमात्मा का अज़ीज़ शागिर्द है। तर्क और बुद्धि भी तुम्हारा पर नहीं पा सकती।

उपनिषद् कहते हैं कि -**नैषा तर्केण मतिरापनेया।**

रूमी कहते हैं - **साये ए तूस्त ऐ पिसर, हर चि बेरुस्त ऐ पिसर**

अर्थात संसार में जो कुछ भी पैदा हुआ है वह तुम्हारी परछाई है।

यही प्रतिबिम्बवाद के रूप में वेदांत और शिवाद्वय में हम समान रूप से देखते हैं लल्लेश्वरी के कई पद्य इसका समर्थन करते हैं।

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतम्,

पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यदा निद्रया।

यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयम्,

तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

तथा

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।

निष्कर्ष :

ईशोपनिषद् को देखें तो वहां पर व्यावहारिक धरातल को बहुत ही सहज रूप में समझाया गया है वहां पर ब्रह्म तत्व या सर्वोच्च सत्ता की सर्व व्यापकता बताई गई है। कहा गया है संपूर्ण जगत ईश्वरमय है। यहां पर जो कुछ भी है उसका भोग हमें त्याग पूर्वक करना चाहिए। इसके साथ ही साथ किसी से ईर्ष्या नहीं नहीं करना चाहिए। यदि वेदांत के इन वचनों को आत्मसात किया जाए तो वर्तमान समय में जितनी भी समस्याएं हैं, अधिकांश समस्याओं का निदान स्वयं हो जाता है। इस तरह ईश्वर अथवा सर्वोच्च सत्ता की व्यापकता को यदि ध्यान दिया जाए तो वह वर्तमान समय के लिए सर्वाधिक प्रासंगिक चर्चा होगी। इससे आचरण की शुद्धता साथ ही साथ स्वयं के प्रति, समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति दायित्व का निर्वहणबोध भी हो पाएगा।

दायित्व निर्वहण के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अपने कार्य को करते हुए हम सौ वर्ष तक जीने की इच्छा रखें। यहां एक ही वाक्य के माध्यम से बहुत सारे तथ्यों को प्रस्तुत कर दिया गया है। एक तो स्वयं जो कर्तव्य निर्धारित किया गया है परिवार के माध्यम से, समाज के माध्यम से या राष्ट्र के माध्यम से उसका निर्वहण करना साथ ही साथ चिरायु होना अर्थात स्वास्थ्य के प्रति सजग होना। इस तरह अद्वैत न केवल एक अमूर्त सत्ता की बात करते हुए इस दुनिया से अलगाव की बात करता है अपितु अद्वैत इस संसार में रहते हुए इस संसार में अपना कर्तव्य निर्वहण करते हुए इस संसार के जो तमाम लोभाविष्टकरने वाले कारक हैं उनसे विलगाव की बात करता है।

यह इस संसार के तमाम आकर्षण से अलग अपने लक्ष्य मात्र पर केंद्रित होने की बात करता है। जब नचिकेता नियम से आत्म तत्व के संदर्भ में बताने की बात की तो यम नाना प्रकार के लोभ देते हैं। कहते हैं कि जो चाहो ले सकते हो, जब तक चाहो जिंदा रहो। किंतु इन सभी बातों को नचिकेता एक सिरे से खारिज करते हुए कहता है कि यह सभी श्वोभाव हैं। अर्थात् मात्र कल तक रहने वाले हैं। यदि इस तथ्य को हम गहराई से देखें तो अद्वैत के महत्वपूर्ण बिंदु के रूप में इसे हम देखते हैं। जहां पर संसार में लक्ष्य से विचलित करने वाले विभिन्न प्रकार के आकर्षक वस्तुओं से अलग हमें लक्ष्य की ओर निरंतर आगे बढ़ने के लिए अद्वैत वचन प्रेरित करते हैं। मनुष्य के लिए अपने लक्ष्य तक बिना विचलित हुए पहुंचना एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। यदि योग दर्शन की बात करें तो वहां भी एक क्रम में यम नियम के माध्यम से लक्ष्य तक पहुंचने का मार्ग बताया गया है। अद्वैत का लक्ष्य उस आत्म तत्व के बोध से संदर्भित है। संसार में उत्तरोत्तर विकास के साथ साथ नाना प्रकार की समस्याओं का जन्म होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि

समस्याओं के निदानार्थ संयुक्तराष्ट्रसंघ का उदय हुआ। इसके साथ ही साथ विभिन्न वैश्विक धरातल पर संस्थानों को हम पाते हैं जो विभिन्न समस्याओं के निदान के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। समस्याओं का निदान उसके मूल में जाने से ही संभव है। इन समस्याओं के निदान के लिए अद्वैत चिंतन अत्यंत ही प्रासंगिक है चार्वाक दर्शन जहां पर प्रत्यक्ष मात्र को ध्यान में रखते हुए सांसारिक विलासिता की बात करता है वहीं पर अद्वैत दर्शन इन मार्गो से होते हुए चरम लक्ष्य की बात करता है। वर्तमान समय में जो भी समस्याएं हैं विश्व में उन्हें एक महनीय समस्या है। विश्वशांति के लिए भिन्न भिन्न प्रकार से प्रकल्प व्यवस्थित करने का आयास किया जाता है किंतु उसके मूल में ना जा कर अन्यान्य समाधान के प्रति प्रयास के कारण उन समस्याओं का निदान संभव नहीं हो पाता है यदि अद्वैत के वचन सर्वं खलु इदं ब्रह्म इन सूक्तियों को ध्यान में रखा जाए तो सहजतया विश्व शान्ति के मार्ग पर होते हुए चरम लक्ष्य तक का मार्ग सुगम हो जाएगा।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. एकादशोपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर
2. अद्वैत वेदान्त का इतिहास एवं सिद्धान्त, राममूर्तिशर्मा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, नई दिल्ली, १९८७
3. भारतीय दर्शन, डा॰ राधाकृष्णन्, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, नई दिल्ली, १९९५
4. भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, उत्तर प्रदेश सरकार, १९५७
5. भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६२
6. भारतीय दर्शन का इतिहास, एस॰एन॰दासगुप्त, भाग १ तथा २, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
7. ऋग्वेद-संहिता, श्रीमत्सायणाचार्यविरचितमाधवीयवेदार्थ-प्रकाशसहिता, नई दिल्ली : राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, मानित विश्वविद्यालय, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी,नई दिल्ली-110058.
8. यास्कमुनिप्रणीतं निरुक्तम्, श्रीमद्भगवद्दुर्गाचार्यकृत-ऋज्वर्थाख्यव्याख्यानुसारिण्या, म.म. पण्डित श्री मुकुन्दझाशर्मणा कृतया निरुक्तविवृत्या टिप्पण्यादिभिः समुपेतं संशोधितं च । चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान,38 यू.ए. बगंलोरोड, जवाहरनगर, दिल्ली -110007
9. History of Sanskrit Literature India-what it can teach us by prof. Maxmullar, History of ancient Sanskrit Literature, Vol. 1 by Winterneitze, History of Sanskrit Literature by prof. Weber, Religion and philosophy of the veda by A.B. Keith.
10. शतपथ-ब्राह्मणम् भाग 1 एवं 2, स्व. पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय विरचितया “रत्नदीपिका” हिन्दी-टीकयोपेतम् । प्रिन्स आफसेट प्रिन्टर्स, 1510 पटौदी हाऊस, दरिया गंज, नई दिल्ली-2
11. वैदिक अग्नि देवता , डा. सुमेधा व्याकरणाचार्याकुसुमलता आर्य प्रतिष्ठान, ४/४२,सैक्टर 5 , राजेन्द्र नगर, साहिबाबाद(गाजियाबाद), उ.प्र. 201005

12. दैवत-संहिता (अग्नि देवता), भट्टाचार्य श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, मुद्रक और प्रकाशक –व.श्री. सातवलेकर, B.A. स्वाध्याय-मण्डल,भारतमुद्रणालय,औंध,(जि. सातारा महाराष्ट्र)
13. Edvard Zeller- Outline of the History of Greek Philosophy p. 16.
14. Stace: A Critical History of Greek Philosophy. P. 42
15. Vasudev Kirtikar. Studies in Vedant p.20
16. Taraporevala, Bombay 1924 A.K. Roy Choudhari- The Doctrine of Maya p.177
17. Dr. S. K. Das A Study of Vedanta P. 146 University of Calcutta 1937